E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2024; 6(2): 101-104
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 22-05-2024
Accepted: 26-06-2024

डॉ. अरुण कुमार वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अरुण कुमार वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

राज्यपाल की भूमिका का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन

डॉ. अरुण कुमार वर्मा

DOI: https://doi.org/10.33545/26646021.2024.v6.i2b.372

सारांश
भारत में संघीय शासन व्यवस्था अपनायी गयी है और संघीय शासन व्यवस्था में राज्यपाल का पद अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि राज्यपाल का पद न केवल केन्द्र और राज्य की शासन व्यवस्था का जोड़ने वाली एक कड़ी होता है, बल्कि वह राज्य की शासन एवं प्रशासनिक व्यवस्था का संरक्षक भी होता है। राज्यपाल के पद को राज्य की संवैधानिक व्यवस्था का वॉच डाग कहा जाता है। भारतीय संविधान में राज्यपाल की शक्तियों को स्पष्ट रुप उल्लेखित किया गया हैं। आज राज्यपाल के पद का राजनीतिकरण हो गया है और केन्द्र सरकार राज्यपाल को अपने राजनीतिक दल का प्रतिनिधि समझती है इसीलिए राज्यपाल को उसके कार्यों एवं उसकी भूमिका को लेकर संदेह से देखा जाता है। परिणामस्वरुप केन्द्र एवं राज्य सरकारों में निरन्तर टकराव देखने का मिलता है, ऐसे में विभिन्न लोगों ने राज्यपाल के पद को समाप्त करने की वकालत की। वहीं कुछ समितियों और आयोगों ने कुछ सुधारात्मक सुझाव दिऐ ताकि राज्यपाल की भूमिका के सम्बन्ध में विवादों को समाप्त किया जा सके। सम्बन्धित शोध पत्र में राज्यपाल की भूमिका का सैद्धान्तिक भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

कूटशब्दः भारतीय संघीय व्यवस्था, राज्यपाल, सहयोगी संघवाद, भारतीय संविधान, अनुच्छेद–356, राष्ट्रपति शासन

प्रस्तावना
भारत में संघ के साथ–साथ राज्यों में भी संसदीय व्यवस्था की स्थापना की गई है। संसदीय शासन व्यवस्था के परिणामस्वरुप राज्यों में भी दोहरी कार्यपालिका पायी जाती है। एक नाममात्र तथा दूसरी वास्तविका कार्यपालिका। राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का नाममात्र प्रधान होता है तथा राज्य मंत्रिपरिषद राज्य की वास्तविक कार्यपालिका होती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 में कहा गया है कि राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होंगी जिसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीनस्थों के माध्यम से करेगा। [1] सैद्धान्तिक रुप से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में राज्यपाल का पद अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रधान होता है। वह राज्य की शासन व्यवस्था का संरक्षक एवं अभिभावक और सहयोगी संघवाद के लिए एक महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में कार्य करता है।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल का पद के सम्बन्ध में कनाडा के संविधान का अनुसरण किया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 155 में अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा 5 वर्ष के लिए होती है या वह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त तक अपना पद धारण करता है। वास्तव में राज्यपाल को राज्य में कूटनीतिक, सैनिक, न्यायिक और आपातकालीन शक्तियों को छोड़कर लगभग वही शक्तियां प्राप्त हैं जो राष्ट्रपति को संघ में प्राप्त होती हैं, वह राज्य में राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रुप में कार्य करता है। राज्यपाल के प्रमुख कार्यों में मुख्यमंत्री की नियुक्ति करना, मंत्रिमण्डल भंग करना, विधानसभा का अधिवेशन बुलाना, विधानसभा भंग करना और केन्द्र के प्रतिनिधि के रुप में कार्य करना होता है। सैद्धान्तिक रुप से राज्यपाल का पद सहयोगी संघवाद का आधार होता है वहीं दूसरी ओर यह भी तर्क दिया जाता है कि राज्यपाल का पद संघीय शासन व्यवस्था के विरुद्ध होता है, यह उसकी भूमिका एवं कार्यों पर निर्भर करता है। नेहरु युग में राज्यपाल का पद केवल संवैधानिक प्रधान तक ही सीमित था जिसके बारे में कहा जाता था कि राज्यपाल का पद गाड़ी के पांचवे पहिए के समान है। राज्यपाल के पद के महत्व एवं उसकी भूमिका के सम्बन्ध में श्रीप्रकाश जैसे अनुभवी राज्यपाल ने कहा कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं केवल संवैधानिक अध्यक्ष हूँ जिसे केवल छूटी हुई जगहों पर हस्ताक्षर करने के अतिरिक्त और कुछ नही करना है। इसी संदर्भ में पद्मजा नायडू ने कहा था कि राज्यपाल का पद सोने के पिजडे में निवास चिड़िया के समान है। [2] संघीय व्यवस्था में राज्यपाल का पद अत्यंत महत्वपूर्ण है वह संघीय व्यवस्था का केन्द्र है क्योंकि वह न केवल केन्द्र एवं राज्य के मध्य एक कड़ी का कार्य करता है बल्कि राज्य का संवैधानिक व्यवस्था

का संरक्षक होता है। राज्यपाल के पद की भूमिका के सम्बन्ध में सबसे विवादास्पद विषय उसकी विवेकाधीन शक्तियां हैं, वर्ष 1952 के बाद से कई ऐसे अवसर आये हैं जब विभिन्न राज्यपालों ने राजनीतिक कारणों के आधार पर मुख्यमंत्री की नियुक्ति में विवादास्पद निर्णय लिए हैं एवं अनुच्छेद 356 का प्रयोग गलत रुप से करने का प्रयास किया है। यद्यपि संविधान में इस बात का प्रावधान किया गया है कि राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधीन शक्तियों के आधार पर किए गये कार्य की विधि मान्यता पर प्रश्नचिन्ह नही उठाया जा सकता। आज जिस तरह से राज्यपाल को लेकर केन्द्र और राज्यों के मध्य विवाद बढ़ रहे हैं उनके समाधान के लिए कोई संवैधानिक समाधान खोजने का प्रयास करना होगा। आज राज्यपाल के पद का राजनीतिकरण हो गया है केन्द्र में शासन करने वाले राजनीतिक दल राज्यपाल को राज्य में अपना राजनीतिक एजेन्ट समझते हैं और राज्यपाल के माध्यम से राज्य की शासन व्यवस्था में अनावश्यक हस्तक्षेप करने का प्रयास करते हैं। अक्सर यह देखा गया है कि जब केन्द्र में सरकार बदलती है तो नयी सरकार पूर्व सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपालों को पद से हटने के लिए दबाव डालते हैं या उन्हे कोई न कोई कारण बताकर पद से हटा देते हैं।

भारत में राज्यपाल की भूमिका पर प्रश्नचिन्ह संविधान लागू होने के साथ ही लगने लगा था, वर्ष 1952 में पहली बार राज्यपाल की भूमिका को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ था। राज्यपाल के पद के राजनीतिकरण की शुरुवात वर्ष 1952 में ही हो गयी थी, वर्ष 1952 में राज्यपाल की भूमिका के सम्बन्ध में सबसे पहला विवाद मद्रास राज्य के राज्यपाल श्री प्रकाश की भूमिका को लेकर था। क्योंकि राज्यपाल ने संयुक्त मोर्चे की अधिक सीटें होने के बावजूद संयुक्त मोर्चे के नेता टी. प्रकाशम के बजाय कांग्रेस के नेता सी. राजगोपालाचारी को मुख्यमंत्री बनने के लिए आमंत्रित किया था, जबकि टी. प्रकाशम के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे ने कांगेस से अधिक सीटें जीती थी। उस समय पं. जवाहर लाल नेहरु एवं राजेन्द्र प्रसाद दोनों ने सी. राजगोपालाचारी के मुख्यमंत्री बनाने का विरोध किया था। पं. नेहरु ने इस सम्बन्ध में दो बातें कही थी। सबसे पहले कांग्रेस को इस बात से बचना चाहिए कि हम पद पर बने हुए हैं और दूसरों को हर कीमत पर बाहर रखना चाहते हैं। उनकी दूसरी चिन्ता यह थी कि नामांकित सदस्य को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना संसदीय प्रणाली की भावना के विरुद्ध है, क्योंकि और सी. राजगोपालाचारी विधायिका के लिए नही चुने गये थे, उन्हें उच्च सदन के लिए नामांकित किया गया था। उनके पास कोई समर्थन नही है और इसलिए मतदाताओं से कोई जनादेश नही है। राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियों की सीमा के बारे में पहला मामला था कि राज्यपाल को किस हद तक अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए, राज्यपाल के इस आचरण को नियंत्रित करने के लिए क्या मानदंड होने चाहिए? [3]

परन्तु वर्ष 1967 में हुए चतुर्थ आम चुनाव के उपरान्त भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में आमूलचूल में परिवर्तन आया। जब देश में पहली बार आठ राज्यों में गैर कांग्रसी सरकार बनी और विभिन्न राज्यों में राज्यपाल ने ऐसे कार्य किए जिन्होने राज्यपाल की भूमिका को और अधिक विवादास्पद बना दिया। क्योंकि राज्यपालों के अधिकार क्षेत्र, मुख्यमंत्री के नियुक्ति के तरीके आदि को लेकर केन्द्र राज्यों के मध्य मतभेद उत्पन्न हुए। भारतीय राजनीति में राज्यपाल के पद के सम्बन्ध एक और महत्वपूर्ण विवाद वर्ष 1967 में आया। जब राजस्थान और पश्चिम बंगाल में भी राज्यपाल की नकारात्मक भूमिका देखने मिली, जहां राज्यपाल ने संवैधानिक मर्यादाओं का उल्लघन किया। चतुर्थ आम चुनाव के उपरान्त गैर कांग्रेसी राज्यों की सरकारें बराबर यह आरोप लगाती रही कि केन्द्र राज्यपालों के माध्यम से उनकी सरकारों को पदच्युत कर रही थी। 1980 के दशक में में यह विवाद इतना बढ गया कि कुछ राजनीतिक दलों ने राज्यपाल का पद पूरी तरह से समाप्त करने की मांग कर डाली।

राज्यपाल के पद को लेकर संविधान सभा में व्यापक वाद विवाद हुआ राज्यपाल के पद को लेकर संविधान सभा की प्रान्तीय संविधान समिति ने यह सुझाव दिया कि राज्यपाल का पद सर्वसाधारण जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुना जाना चाहिए। विगत् कुछ दशकों से राज्यपाल का पद विवादों में घिरा रहा है क्योंकि राज्यपाल ने अपनी संवैधानिक दायित्वों को दरकिनार करते हुए राजनीतिक आधार पर पक्षपात किया है। राज्यपाल की भूमिका पर इस आधार पर आक्षेप लगाया जाता रहा है कि कुछ राज्यपाल निष्पक्षता और दूरदर्शिता जिसकी उनसे उम्मीद की गयी थी, के गुणों को प्रदर्शित नही कर सके। राज्यपाल का पद एक संवैधानिक पद है जिसकी कुछ गरिमा होती है लेकिन कुछ राज्यपालों द्वारा विशेष रुप से राष्ट्रपति शासन की सिफारिश में और राष्ट्रपति के लिए विधेयक आरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका से जबरदस्त विद्वेष उत्पन्न हुआ। इस बात की भी आलोचना भी की जाती रही है कि संघ सरकार द्वारा अपने राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए राज्यपालों का प्रयोग करती रहती है। कई बार राजनीतिक स्वार्थ के लिए राज्यपालों ने संघ सरकार के एजेन्ट के रुप में कार्य करते हैं।

राज्यपाल की विवादास्पद के सम्बन्ध में सैकड़ों घटनाएं हैं। वर्ष 1959 में केरल की ई एम एस नम्बूदरीपाद के नेतृत्व की साम्यवादी सरकार को राज्यपाल की रिर्पोट के आधार पर बर्खास्त कर दिया गया। इस प्रकरण में राज्यपाल की भूमिका अतयंत संदिग्ध रही क्योंकि नम्बूदरीपाद की सरकार को विधानसभा में स्पष्ट बहुमत था, लेकिन सरकार बर्खास्त को उचित ठहराने के लिए तर्क दिया गया कि सरकार ने जनता का विश्वास खो दिया था।

वर्ष 2005 में बिहार के राज्यपाल बूटा सिंह ने बिहार विधानसभा भंग कर दिया जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय ने सुनवायी करते हुए बिहार विधानसभा भंग किये जाने को असंवैधानिक घोषित कर दिया तथा केन्द्र सरकार और राज्यपाल को कडी फटकार लगायी। न्यायालय ने कहा कि राज्यपाल द्वारा किया गया कार्य लोकतंत्र के लिए विघटनकारी है। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश वाई के सब्बरवाल की अध्यक्षता में पांच सदस्यीय संविधान पीठ ने बहुमत से दिए निर्णय में कहा कि बिना किसी सबूत के विधानसभा भंग की गई। मामले में राज्यपाल केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का गुमराह करने का साफ साफ दोषी हैं। उन्होने संवैधानिक नैतिकता का मजाक उडाया है। न्यायालय ने कैबिनेट को सीधे तौर पर दोषी नही ठहराया पर कहा कि राज्यपाल के प्रस्ताव पर विवेकपूर्ण निर्णय नही किया गया। पीठ ने सुझाव दिया कि सरकारिया आयोग की रिर्पोट के अनुरुप राज्यपाल के पद पर किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए जो राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि के रुप में कार्य न करे।

अरुणांचल प्रदेश और उत्तराखण्ड राजनीतिक संकट उत्पन्न हुआ जिसमें राज्यपाल की भूमिका पक्षपातपूर्ण रही क्योंकि राज्यपाल ने संवैधानिक मर्यादाओं को दरकिनार कर राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश कर दी। राज्यपाल की भूमिका पर विवाद खडा हो गया जिसमें उच्च न्यायालय को भी हस्तक्षेप करना पडा। वर्ष 1970 में नियुक्त भगवान सहाय समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा था कि मंत्रिमण्डल को बहुमत का विश्वास प्राप्त है अथवा नही इस बात का निर्णय राजभवन नही बल्कि विधानसभा में ही किया जाना चाहिए। डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में, संवैधानिक क्षमता के न्यायिक दृष्टिकोण से ही राज्यपाल की भूमिका पर विचार करना पर्याप्त नही है। आवश्यक यह है कि राजनीतिक व्यवस्था की प्रामाणिकता पर पड़े उनके व्यवहार एवं कार्यों के व्यापक प्रभावों का मूल्याकन किया जाय। [4]

अब सवाल यह उठ रहा है कि क्या इस दौर में राज्यपाल की भूमिका राज्य में केन्द्र सरकार के हथियार के रुप में होने लगी है। 2013 में लोकसभा सांसद कीर्ति आजाद ने तो राज्यपाल पद खत्म कर देने की मांग कर डाली थी और अन्य कई सांसदों ने भी उनकी इस मांग का समर्थन किया था। वर्ष 2014 में केन्द्र में भारतीय जनता पार्टी की सरकार आने के बाद चार राज्यों के राज्यपालों को हटा दिया था, जिनकी नियुक्ति यू.पी.ए. की सरकार द्वारा किया गया था, इसके विरुद्ध उत्तराखण्ड के राज्यपाल कुरेशी ने केन्द्र सरकार के इस कार्य के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय का में याचिका दाखिल की जिस पर सुनवायी करते हुए न्यायालय ने केन्द्र सरकार का फटकार लगायी।

वर्ष 2016 में उत्तराखण्ड में एतिहासिक फैसले के तहत राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया था। हलाँकि राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की जिम्मेदारी राज्यपाल की मानी जाती है। लेकिन केन्द्र सरकार ने राष्ट्रपति से राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने का कहा और राष्ट्रपति ने उस पर हस्ताक्षर कर दिया। जबकि राज्यपाल ने 28 मार्च तक कांग्रेस पार्टी का सरकार का बहुमत सिद्ध करने का मौका दिया गया था। ऐसे में राज्य में राज्यपाल के पद की हत्या बताकर सुप्रीम कोर्ट में चुनौती देने की बात कही गयी। इस पूरे मामले में सबसे अहम भूमिका राज्यपाल हैं। फ्लोर टेस्ट के एक दिन पहले राज्यपाल ने कांग्रेस के 9 बागियों का बर्खास्त कर दिया वहीं इसके जवाब में केन्द्र ने राज्यपाल की बात को अनदेखा कर दिया। [5]

भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत में सहयोगी संघवादी की आधारशिला रखी थी, जिसमें राज्यपाल का पद एक महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में है। लेकिन विगत कुछ दशकों से राज्यपाल की भूमिका के सम्बन्ध में कई विवाद हुए हैं जिससे संघ और राज्य के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई है। जिसके कारण राज्यपाल के पद को समाप्त करने तक की मांग उठने लगी है। अन्तर्राज्यीय परिषद की बैठक बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने राज्यपाल के पद को अप्रसांगिक कहकर राज्यपाल के पद को समाप्त करने की मांग की। जिस प्रकार राष्ट्रपति संघ की शासन व्यवस्था का संरक्षक होता है उसी प्रकार राज्यपाल राज्य की शासन व्यवस्था का संरक्षक होता है। राज्यपाल का पद राज्य महत्वपूर्ण अंग होता है। सामान्य समय में राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रुप में और राज्यपाल का पद भारतीय संघीय शासन व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है।

अगस्त 2024 में कर्नाटक के राज्यपाल थावरचंद गहलोत ने मुख्यमंत्री सिद्धरमैया पर मुकदमा चलाने की सहमति देकर एक नया विवाद खड़ा कर दिया है, यद्यपि राज्यपाल को यह अधिकार है कि किसी भ्रष्टाचार की स्थिति वह मुख्यमंत्री या किसी अन्य मंत्री पर मुकदमा चलाने की अनुमति दे सकता है। दरअसल यह उन पर यह मुकदमा एक भूमि घोटाले से सम्बन्धित है जिसमें उन पर आरोप है कि उन्होने मैसूर शहरी विकास प्राधिकरण के भूमि आंवटल में घोटाला किया है। इस पर मुख्यमंत्री ने यह आरोप लगाया कि केन्द्र सरकार राजभवन पर दबाव डालकर उन्हें बदनाम करने का प्रयास कर रही है। वहीं उपमुख्यमंत्री डी. के. शिवकुमार ने कहा कि राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री को कारण बताओ नोटिस जारी करना संवैधानिक शक्तियों का दुरुपयोग है, और यह कदम राजनीति से प्रेरित होकर उठाया गया कदम है। मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने राज्यपाल को केन्द्र सरकार की कठपुतली कहा। इस विवाद को कांगेस के विधान परिषद सदस्य इवॉन डिसूजा ने यह कहकर और बढ़ा दिया कि राज्यपाल चोर और धोखेबाज हैं, यदि राष्ट्रपति कर्नाटक के राज्यपाल को उनके पद से नही हटातें हैं तो राज्य में बांग्लादेश जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी और उन्हे बांग्लादेश की पूर्व प्रधानमत्री शेख हसीना की तरह कर्नाटक छोड़कर भागना पडेगा। [6] दरअसल इस प्रकार के विवाद का मुख्य कारण राजनीतिक टकराव है।

सरकारिया आयोग [7] ने राज्यपाल के पद और उसके कर्तव्यों के बारे में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिया ताकि राज्यपाल के पद से सम्बन्धित विवादों को कम किया जा सके। आयोग ने कहा कि संघ की विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा संचालित राज्य सरकारों को अस्थिर करने के लिए राज्यपाल के कार्यालय का उपयोग किए जाने की आलोचना की, जोकि एक संतुलित संघीय व्यवस्था के लिए ठीक नही है। सरकारिया आयोग ने राज्यपाल के पद और उसकी भूमिका में सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिऐ।

- जैसे कि राज्यपाल पद पर नियुक्ति होने वाला व्यक्ति उस राज्य से बाहर का होना चाहिए, किसी राज्य के राजनीतिज्ञ को उस राज्य का राज्यपाल नही बनाया जाना चाहिए।
- राज्यपाल को निष्पक्ष होना चाहिए और राज्य को क्षेत्रीय राजनीति के नही शामिल होना चाहिए।
- एक बार राज्यपाल का पद धारण करने वाले व्यक्ति को पुनः राज्यपाल, उपराष्ट्रपति या राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य किसी पद पर नियुक्ति नही होना चाहिए।
- राज्यों में राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356) को प्रयोग अति विशेष परिस्थितियों में लागू करना चाहिए।

राष्ट्रीय संविधान समीक्षा आयोग [8] (1983) ने राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया कि राज्यपाल की नियुक्ति एक समिति द्वारा किया जाना चाहिए, और समिति में प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष और सम्बन्धित राज्य का मुख्यमंत्री होना चाहिए। साथ ही यह भी सुझाव दिया कि राज्य में राजनीतिक संकट के समय अनुच्छेद 356 के आधार पर राष्ट्रपति शासन लगाने से पहले राज्य के मुख्यमंत्री को राज्य की राजनीतिक स्थिति पर अपना पक्ष रखने एवं उसके समाधान का अवसर देना चाहिए।

पुंछी आयोग [9] (2009) ने राज्यपाल के कार्यकाल को 5 वर्ष फिक्स करने का सुझाव दिया और कहा कि यदि 5 वर्ष से पहले उसे हटाना हो तो उसके लिए महाभियोग की प्रक्रिया की व्यवस्था होना चाहिए।

राज्यपाल का पद सहयोगी एवं क्रियाशील संघीय व्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है वह राज्यों की संवैधानिक व्यवस्था का संरक्षक होता है, इसलिए उसका राजनीतिक रुप से तटस्थ होना अति आवश्यक है, किन्तु राज्यपाल के राजनीतिक सम्बन्ध ही विवाद का मुख्य कारण होता है। यद्यपि पिछले सात दशकों में कई ऐसे मामले आयें हैं जिसमें राज्यपाल केन्द्र सरकार के इसारे पर राज्य सरकारों को अस्थिर करने का प्रयास किया है जिससे राज्यपाल की भूमिका पर प्रश्नचिन्ह लगा है। जिसमें राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियां सबसे विवादास्पद विषय रही हैं। राज्यपाल की भूमिका को और अधिक जवाबदेह और उत्तरदायी बनाने के लिए कुछ सकारात्मक संवैधानिक प्रावधान किए जाने की आवश्यकता है अथवा निर्देशक सिद्धान्त तय किया जाना चाहिए ताकि राज्यपाल की भूमिका और कार्यों को स्पष्ट कर विवादों को कम किया जा सक और संघवाद की इस कड़ी को और मजबूत किया जा सके।

सन्दर्भ

1. पाण्डेय, जे. एन., भारत का संविधान, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
2. फाड़िया, बी.एल., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा।
3. मेहता, भानू प्रताप, गवर्नर कन्ट्रोवर्सी, सेल्फ रिस्ट्रेन्ट इज नीडेड, टू ट्रांस्सेन्ड द पोलिटिक्स ऑफ पोलराइजेशन, द टेलीग्रॉफ ऑनलाइन, 08 जुलाई 2004.
4. नारायण इकबाल, भारतीय सरकार एवं राजनीति,1974, पृष्ठ 266।

5. चोपड़ा, अश्विन, पंजाब केसरी 8 जुलाई 2017।
6. द इण्डियन एक्सप्रेस, 9 अगस्त 2024, बैंगलूरु।
7. सरकारिया आयोग रिर्पोट, भाग 4, 1983।
8. संविधान समीक्षा आयोग रिर्पोट भाग 8, केन्द्र राज्य सम्बन्ध, 2002।
9. केन्द्र राज्य सम्बन्ध पर पुंछी आयोग रिर्पोट, वाल्यूम–1, 2010।